गोविभा

गोविज्ञान भारती का
संदेशवाहक मासिक

वर्ष : 10 ● अंक : 6 | सम्पादक : नरेन्द्र दुबे, डॉ. पुष्पेन्द्र दुबे 20 सितम्बर, 2012

आश्रमों की कोई कीमत नहीं अगर वे क्रांति के काम में नहीं जुटते

- विनोबा

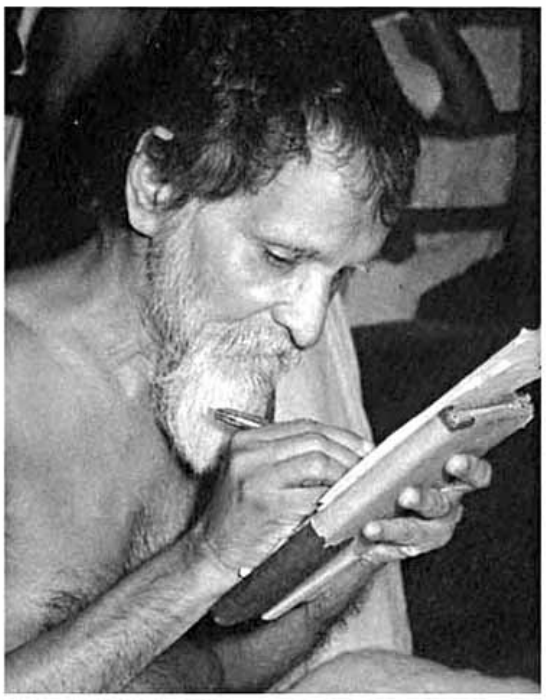

आश्रमवालों को मैं सुनाना चाहता हूं कि में आपके आश्रमों की कोई कीमत नहीं करूंगा, अगर आप अहिंसक क्रांति के काम में नहीं जुटेंगे। आश्रम कोई पांच एकड़ जमीन में नहीं होता। वह तो मनुष्यों में है। आश्रम कभी टूटता नहीं। यदि अहिंसक आंदोलन की सफलता के लिए हमारे सबके सब आश्रमों की आहुति हो जाये तो अच्छा ही है। इस तरह बार-बार सब आश्रमों की आहुति हो और बार-बार उनका नया जन्म हो। हमे जीते-जी यह देखने का मौका मिले कि नये-नये आश्रम पैदा हो रहे हैं और तेजस्वी बन रहे हैं। हमारे मन में यह नहीं है कि आश्रमों को जैसे-तैसे चलाना ही है। आश्रमवाले ऐसे अभियानों में जरूर हिस्सा लें। कभी साल-दो साल के लिए आश्रम बंद कर के जाना पड़े तो भी अवश्य जायें, यह हमारी मन:स्थिति है।

फिर भी मैं ब्रह्मविद्या-मंदिर को चालित करना नहीं चाहूंगा

संभव है, आश्रम के इन सब लोगों को भी जाने का मौका आये। ये लोग तो हुक्म के पाबंद हैं। आश्रम में तो अपना कुछ है ही नहीं। हुक्म हुआ कि उठे, और चल दिए। लेकिन जबकि बाहर के काम की मुझे इतनी तीव्रता है और जरूरत भी है, तब भी मैं ब्रह्मविद्या-मंदिर को चलित करना नहीं चाहूंगा। इस पर से यहां रहने वाले लोगों की अपनी जिम्मेदारी का भान होना चाहिए। जितना श्रम, मेहनत पदयात्रा में होती होगी या अपने सैनिकों को सीमा पर होती होगी, जो जिम्मेदारी का भान उनको होता होगा उससे कम भान यहांवालों को रहा होगा तो ब्रह्मविद्या नहीं, भ्रम है और हम आत्मवंचना कर रहे हैं, ऐसा होगा।

चित्त संवेदनशील हो यह अच्छा है। दुनिया में जो कुछ आनंददायी और शोकदायी घटनाएं होती हैं, उनका चित्त पर असर होना ठीक ही है। लेकिन उसका परिणाम स्वधर्म-निष्ठा बढ़ाने में होना चाहिए, कम होने में नहीं। हम जो काम कर रहे हैं, उसी से हम दुनिया को मदद पहुंचा रहे हैं, ऐसी निष्ठा ही नहीं अनुभूति भी होनी चाहिए। आपका ऐसा प्रकाश पड़ना चाहिए कि पावरहाउस के समान इस वातावरण से सबको प्रकाशन मिल रहा है। यह हो सकता है। ऐसी ताकत तुम पैदा करो।

सम्पादकीय

कृषि और उद्योगीकरण के द्वंद्व में फंसी देश की अर्थव्यवस्था

देश की आजादी के बाद से भारत देश का चरित्र बदलने के प्रयास पुरजोर तरीके से होते रहे हैं। जब हम लोग अंग्रेजों के गुलाम थे, तब अंग्रेजों ने इस देश के लाखों गांवों में फैले उद्योग-धंधों को तहस-नहस कर दिया। इससे न केवल हमारे देश की दुनियाभर में श्रेष्ठ हस्तकला और ग्रामीण उद्योग-धंधे नष्ट होने की कगार पर पहुंचे, बल्कि इसने सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक ताने-बाने को ही छिन्न-भिन्न कर दिया। ये उद्योग-धंधे खेती के बदले में नहीं थे, बल्कि ये सभी उद्योग खेती के पूरक थे। स्वतंत्रता के बाद नीति-निर्माताओं ने ग्रामीण उद्योग और बड़े उद्योगों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के बहुतेरे प्रयास किए, परंतु केवल इच्छा मात्र से क्या हो सकता है। देश के मानस में पश्चिमी विकास के मॉडल का भूत इस कदर समाया हुआ है कि उसका बस चले तो खेती और उस पर आधारित उद्योगों को क्षणभर में तिलांजलि दे दे। संत विनोबा ने जब पहली बार योजना आयोग के सामने गांव को आगे रखकर देश की योजना बनाने की बात कही थी, तब उनके विचारों से पूरी सद्भावना रखते हुए भी योजना आयोग ने उनके विकास के मॉडल को दरकिनार कर दिया। उद्योगीकरण की वकालत करते हुए 10 सितम्बर 1962 को देश के प्रतिरक्षा मंत्री वी.के.मेनन ने नागरिक कल्याण संघ के कार्यक्रम में कहा था कि देश को आर्थिक, सामाजिक विपन्नता से बाहर निकालने के लिए एकमात्र रास्ता यही है कि तेजी से उद्योगीकरण किया जाए। हमें पचास प्रतिशत लोगों को खेती से हटाना होगा और उनके लिए वैकल्पिक रोजगार ढूंढना होंगे। आज हम 2011 की जनगणना के आंकड़ों पर नजरें दौड़ाते हैं तब भी उसमें यही बात उभरकर सामने आती है कि आज भी 65 से 70 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करती है।

यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि विगत दस वर्षो में 2 करोड़ किसान खेती छोड़ चुके हैं। करीब 1 लाख किसानों ने विभिन्न कारणों से आत्महत्या की है। यह आम कथन हो चला है कि खेती मुनाफे का सौदा नहीं रह गयी है। जीवन की आधुनिक सुविधाओं कार, फ्रीज, मोबाइल, कम्प्यूटर और विलासिता की तमाम चीजों को बनाने वाले निर्माता उनकी वस्तुओं का भाव स्वयं निर्धारित करते हैं, परंतु भारत देश की कृषि उपज का भाव या तो सरकारें तय करती हैं, या व्यापारी तय करते हैं, या फिर वे उपभोक्ता, जो उसकी लागत के विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं। गांव के किसानों को पैसे ने गुलाम बना रखा है। इस पैसे के मोह से छूटते ही वे सच्ची आजादी की ओर अग्रसर हो जाएंगे। आज उनकी सारी उत्पादक गतिविधियां शहरों को ध्यान में रखकर संचालित हो रही हैं। इसलिए वे सरकारों और शहरवासियों के इशारों पर नाचने के लिए मजबूर हैं। दूध, अनाज, फल, सब्जियां, कपास आदि की जरूरत शहरवालों को ज्यादा है। इसके बाद भी मूल्य तय करने का अधिकार शहरवालों के पास है। ऐसा दुनिया में शायद ही कहीं होता हो कि उत्पादन तो मेहनतकश किसान करे और उसका मूल्य और कोई निर्धारित करे। यहां पर ग्रामीणों और शहरवासियों के बीच संघर्ष की वकालत नहीं की जा रही है, परंतु उस ओर ध्यान आकर्षित किया जा रहा है कि खेती-किसानी के बिना यह देश जीवित कैसे रहेगा? हम कहनेभर को ही किसान को अन्नदेवता मानते हैं, परंतु देश की सारी नीतियां इस किसान के खिलाफ खड़ी हैं। विपरीत परिस्थितियों में भी वह इस देश में भी हल जोत रहा है, यह इस देश का सौभाग्य है। यद्यपि उससे हमने उसकी गाय छीन ली, बैल कतलखाने पहुंचा दिए, जमीन का अधिग्रहण कर लिया, दबंगों ने जमीन पर कब्जा कर लिया, उसकी फसल का पूरा मूल्य उसे नहीं देते, कभी अतिवृष्टि और कभी अनावृष्टि। आसमानी और सुलतानी का जितना प्रभाव इस देश के किसान पर पड़ता है उतना किसी अन्य पर नहीं। अब सरकारों और गैरसरकारी संगठनों से इनके उद्धार की अपेक्षा करना व्यर्थ है। ग्रामीणों को अपनी मुक्ति स्वयं सिद्ध करना होगी। विज्ञान के जमाने में गांव को अधिक समय तक गुलाम नहीं रखा जा सकता। वैज्ञानिक साधनों की सहायता से ग्रामीण जब तक अपनी जरूरत का सामान स्वयं उत्पादित कर उसका उपभोग प्रारंभ नहीं करते, तब तक गांव 'गोकुल' नहीं बन सकता। बाजार के कंस को मारने के लिए कृष्ण अर्थात् किसान को गांव के चारों ओर नाकेबंदी करना होगी। गांव की लक्ष्मी को गांव में पुनर्स्थापित किए बिना इस देश की आध्यात्मिक चेतना को अक्षुण्ण बनाए रखना कठिन होगा।

- डॉ.पुष्पेंद्र दुबे

इस अंक में ...

- वर्तमान आर्थिक स्थिति
- भारत में कताई का इतिहास
- खादी रक्षा अभियान
- खादी नीति में संशोधन के लिए निवेदन
- भारत में ब्रिटिश राज
- शहरों से अधिक खर्च करते हैं भारत के गांव
- प्रेरक कहानियाँ
- भूदान में दिखती है संत विनोबा भावे की ताकत

वर्तमान आर्थिक स्थिति

- जे.सी.कुमारप्पा

वर्तमान स्थिति में भारत को सबसे बड़ी आवश्यकता खूब सोच विचारकर बनाई गई एक ऐसी योजना की है, जिसके अनुसार हम अपने निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति कर सकें। इसकी कोई जरूरत नहीं कि हम उन बातों की नकल करें जो अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड या अन्य देशों में की गई हैं। हरएक राष्ट्र को अपनी समस्याएं अपनी विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपने ही खास ढंग से हल करनी पड़ती हैं। ऐसी हालत में, भारत की वे कौनसी विशेष परिस्थितियां हैं जिन पर हमें विचार करना है। किसी भी आर्थिक संगठन की परीक्षा करते समय हमें ती बातों पर विचार करना होगा - मानवीय पक्ष, प्राकृतिक साधन और वह शक्ति जो उपयोग में आ सकती है। इन्हीं सब बातों का लेखा-जोखा हमें उस समय भी करना पड़ेगा जब हम अपने उद्देश्यों के अनुरूप किसी आर्थिक संगठन के निर्माण करने की बात ठानेंगे।

अर्थशास्त्र में नैतिकता

इन तीन बातों के सिवा देश के आगे कोई सांस्कृतिक और दार्शनिक आदर्शवाद भी पाया जा सकता है। हमारी पद्धति को उस आदर्शवाद का ध्यान रखते हुए यत्किंचित परिवर्तित किया जा सकता है। यदि कोई आदमी पैसा कमाने के लिए निकलता है तो उसका अनिवार्यत: यह अर्थ नहीं हो जाता कि जब तक उसे रुपया मिलता रहता है, तब तक उसके जीवन का उद्देश्य सिद्ध होता रहता है। और यदि केवल पैसा बनाने का ही सवाल है, तब तो सबसे सहज रास्ता यही है कि कोई अपना हाथ किसी दूसरे की जेब में डाल दे। तब किसी को मेहनत करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह केवल किसी दूसरे का माल चुरा लेता है और जल्दी से धनी बन जाता है। किंतु कुछ लोगों के नैतिक आचार होते हैं। और वे धन कमाने के इस ढंग को ठीक नहीं मानेंगे। इसलिए, हमारे आदर्श और काम दोनों ही कुछ ऐसी बातों से अनुशासित होते हैं कि जो हमें उस स्थिति में खड़ा कर देती हैं जहां से हम अपने ही उद्देश्य को अंतिम लक्ष्य के रूप में आगे नहीं बढ़ सकते। और फिर जहां तक मानव का संबंध है, उसके सभी कर्मो में नैतिकता का तो ऊँचा स्थान रहना ही चाहिए।

इसलिए हमें अपने कार्यो के विभिन्न प्रभावों और परिणामों पर विचार करना चाहिए। इसके बाद हम यह कह सकेंगे कि हमारे आर्थिक संगठन का क्या रूप हो और उसे हम कैसे बनायें।

हमारा रास्ता

तो हमारे देश में हमारे मार्ग की कौन-कौन सी बाधायें हैं और उन्हें हमें किस प्रकार हटाना है। हम अपनी समस्याओं का निराकरण करने के लिए चाहे विशुद्ध भौतिक दृष्टिकोण को ग्रहण करें अथवा तात्विक दृष्टिकोण को। अपने कामों के अलावा हमें जनता की प्रतिक्रिया को भी आंकना होगा और तब फिर यह देखें कि जनता के साथ ही हम कितना आगे बढ़ पाये हैं। इसी ढंग से गांधीजी ने हमें एक ऐसा कार्यक्रम और रास्ता बताया जो दूसरे देशों में अपनाये गये कार्यक्रमों में अत्यंत भिन्न है।

अमेरिका, इंग्लैंड और दूसरी जगहों में भौतिकता के पंथ को अपनाया गया है और इसलिए उन्होंने साधनों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। दूसरी ओर हम लोग अपने साधनों और साध्य की सीमायें जानते हैं। उनके पीछे एक जीवन दर्शन है। इसलिए हमें इन सबको संयोजित कर एक ऐसा रास्ता अपनाना है जो हमारे लक्ष्य तक हमें पहुंचा सके। यदि हम केवल भौतिक दृष्टिकोण को अपनायें तो उससे हमारी नैतिक मान्यताओं की उपेक्षा होगी। यदि हम दावा करते हैं कि हम एक संस्कृत राष्ट्र हैं और हमारी एक आध्यात्मिक परम्परा है, तो यह स्वाभाविक ही है कि हमें अकसर कुछ मान्यताओं के मानदंड का विचार रखना होगा। हमारी यही मान्यताएं विकास की यात्रा में हमारी स्थिति का संकेत करेंगी। यदि हम स्थायी परिणाम चाहते हैं तो हमें अंततोगत्वा धार्मिक और आध्यात्मिक धरातल पर मिलना होगा।

प्रधानता

वे कौनसी चीजें हैं जिनकी हमें सबसे ज्यादा जरूरत है? यह कहना, कि भारत गरीब देश है और हमें अधिक उत्पादन की आवश्यकता है महज एक लीक पीटने जैसा है। विभिन्न मंचों से हमें यही पुकार सुनाई पड़ती है। दरअसल हमारी गरीबी की जड़ कहां है? उसका ज्ञान होने से हमें अपने आक्रमण के केंद्र का पता चल जाता है। कुछ लोग एटम बम बनाने की इच्छा करेंगे, कुछ लोग मोटरकारों का उत्पादन बढ़ाना चाहेंगे और कुछ लोग इस मत के भी हो सकते हैं कि मेज-कुर्सियां ही ज्यादा बनाई जायें।

यह सब निस्संदेह 'अधिक' का ही उत्पादन माना जायेगा। किंतु मानवीय आवश्यकताओं की हमारी विवेचना है उसके साथ इस अधिक की पटनी बैठने, न बैठने पर ही हमारी पद्धति के औचित्य की दारोमदार है। यदि हम यह अनुभव करें कि हमारे देश की व्यापक दरिद्रता वह है जिससे कि हमारे गांववाले पीड़ित रहते हैं, तब तो हमें उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उन चीजों का उत्पादन बढ़ाना होगा जिनसे कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो। यदि गांववाले को गल्ला, कपड़ा और मकान की कमी हो तो हमें इन्हीं चीजों के निर्माण पर अपना ध्यान केंद्रित करना होगा। वस्तुत: इसी प्रकार का उत्पादन सार्थक होगा।

अधिक भोजन पैदा करो, मगर उस तरह का नहीं जैसा अमेरिका और आस्ट्रेलिया में किया जाता है। वरन वह माल उपजाओ, जिसकी कि हमारे गांववालों को जरूरत है। मुरब्बा भी एक प्रकार का खाद्य पदार्थ है। किंतु हमारी जनता के रोज के खाने से उसका दूर का नाता है। अस्तु, हमारे सामने अपने देश की मौजूदा जरूरतों का एक साफ चित्र होना चाहिए। जब तक हमें अपनी सही आवश्यकताओं का पता न होगा, तब तक हम अपनी आर्थिक नवरचना को उनकी ओर केंद्रित न कर सकेंगे।

हमारी आवश्यकताएं

एक बार मध्यप्रदेश में 10-12 की तादाद में हम लोग रात को एक गांव से दूसरे गांव जा रहे थे। चांदनी रात थी। दो गांवों के बीच में पड़ने वाले एक जंगल से होकर हम गुजर रहे थे। हमें हिलती-डुलती एक छाया दीख पड़ी। कुछ का कहना था किवह एक जंगली जानवर है और किसी ने का कि वह मनुष्य की आकृति है। अंत में हम साहस बटोरकर उसकी ओर बढ़े। नजदीक जाने पर मालूम हुआ कि वह एक वृद्धा है जो थोड़े से चिथड़ों से तन ढांके धरती पर टरक रही थी। वह घास के बीज इकट्ठे कर रही थी। हमने पूछा, ''इतनी रात में तुम यह क्या करने निकली हो ?' उसने जवाब दिया कि यदि वह दिन को घास के बीज बटोरने आती तो उस चरागाह का मालिक उसे खदेड़ देता। घास के बीजों को इकट्ठा कर वह उन्हें उबालती और अपने खाली पेट को भरने के लिए उनका कुछ आहार बनाती। ऐसी भयानक दरिद्रता हमारे देश में है। घास के बीजों की जगह उस बेचारी को बाजरा या ज्वार दिया जा सकता है और इसका अर्थ होगा उसके जीवन स्तर को उंचा उठाना। अत: जब हम अपने जीवन-स्तर को उंचा उठाने की योजना बनायें, तो हमें उस मानवाकृति को ही अपने सामने रखना होगा। जब तक हमारी बुनियादी जरूरतों की यह हालत है, तब तक शहरों में रेफ्रिजरेटर्स और आराम के दूसरे साधनों की उपलब्धि की योजनाएं बनाना निरर्थक है। हम अधिक अन्न उपजाओ की बातें किया करते हैं। अब कोई बताये कि ऑस्ट्रेलिया के मुरब्बे का उस वृद्धा के लिए क्या अर्थ है जो घास के बीजों पर जिंदा रहती है ? अपने देश के लिए योजना बनाते समय हमें इस स्थिति को बराबर ध्यान में रखना है।

इसलिए अपने देश की आर्थिक योजना बनाते समय हमें जनता की आवश्यकताओं और परिस्थितियों का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। और भी चीजों के बारे में हमें योजनाओं की जरूरत हो सकती है। हमें प्रधानता का एक नियम बनाना होगा। उदाहरण के लिए जमीन का कोई टुकड़ा, जिसमें गल्ला पैदा किया जाता है, मिलों के लिए कच्चा माल पैदा करने के काम में लिया जा सकता है। जब तक गल्ले की कमी है, तब तक कच्चे माल के उत्पादन को दी जाने वाली इस प्रकार की प्रधानता अनुचित ठहराई जाएगी। जमीन के उपर बढ़ती हुई आबादी का भार ही नहीं पड़ता है। जमीन से मिलों के तकाजे हैं उनकी तुलना आबादी के तकाजों से की जा सकती है। जब एक बच्चा पैदा होता है तो उसके उदर पोषण के लिए एक एकड़ जमीन की जरूरत होती है। किंतु जब एक मिल बनता है तो दो या तीन हजार एकड़ जमीन को उसकी जरूरत पूरी करनी पड़ती है। जमीन पर बढ़ती हुई आबादी के भार की और इसे रोकने के लिए संतति निग्रह की बातें अकसर की जाती हैं। हम इसी प्रकार मिल निग्रह के सवाल का सामना क्यों न करें ?

उत्पादन क्या है ?

शक्कर उद्योग की बात ले लीजिए। घास के बीज इकट्ठा करने वाली उस बुढ़िया की जरूरतो की नजर से देखें तो सफेद चीनी का अधिक उत्पादन कोई उत्पादन नहीं है। उसे संभवत: पर्याप्त स्टार्च की ही जरूरत है। जिसे उसका शरीर शर्करा और जीवन शक्ति में बदल सके। वस्तुत: उसे सफेद चीनी या पालिश किए हुए चावल की आवश्यकता नहीं।

इसी प्रकार बिहार में देखिए। वहां शक्कर के मिल हैं। हम जिस जमीन में गन्ना पैदा करते हैं उस जमीन में नाइट्रोजन और फॉस्फेट कम हो जाते हैं। क्या हमें इससे कुछ भी लाभ होता है ? नहीं। गन्ने के रस से हम उसके पोषक तत्व हर लेते हैं। उसकी सफेद चीनी बना लेते हैं। सफेद चीनी कोयले की तरह ही एक शक्ति उत्पादक पदार्थ है। वह शरीर को गर्मी पहुंचाती है, पोषण नहीं। जबकि गुड़ से हमें यह गर्मी भी मिलती है और पोषक तत्व भी।

विज्ञान क्या है ?

हमें यह याद रखना चाहिए कि अमेरिका की हालत हमसे बिलकुल निराली है और हम उनके ढंगों की नकल नहीं कर सकते। इसलिए जिन परिस्थितियों में हम काम करते हैं, वे ही हमें अपनी समस्याओं के हल का रास्ता बतायेंगी। हम, जर्मनी, अमेरिका या इंग्लैंड का निरा अनुकरण नहीं कर सकते। अपनी तमाम 'वैज्ञानिक' पद्धतियों के बावजूद भी वे कहां जा पहुंचे हैं ? यह ध्यान देने की बात है कि उत्पादन के केवल भौतिक पक्ष पर जोर देने के कारण, ये देश, पिछले वर्षो में किन सीमाओं तक पहुंच गए हैं। लोग पूछते हैं कि ''इस वैज्ञानिक युग में क्या हम प्रस्तावित सीधे साधे रास्तों से आगे बढ़ सकते हैं ? क्या वह विज्ञान है ?'' प्रकृति का ज्ञान, और उसके साथ हमारे अनुकूल संबंधों की स्थापना ही विज्ञान है। प्रकृति की देनों के विनाश कार्य में संलग्न रहते हुए आपका यह कहना फिजूल है कि हम वैज्ञानिक युग में रह रहे हैं। वस्तुत: विज्ञान को तो हमें य सिखाना चाहिए कि हम उचित ढंग से बिना कुछ बरबादी किये अपनी जरूरतों को किस तरह पूरा करें। इससे तो हम यही निष्कर्ष निकाल पाते हैं कि जर्मनी, अमेरिका, और फ्रांस आदि दूसरे देशों में जो मार्ग अपनाये गये हैं, वे न तो वैज्ञानिक हैं और न उत्पादक ही। अपने डेढ़ सौ वर्ष के अनुभव के बाद, आज उन्हें कितनी चीजों के लिए परमुखापेक्षी बनना पड़ता है। जर्मनी को तो अपने खाने तक के लिए मोहताज होना पड़ रहा है। सौ वर्ष के अनुभव के बाद फ्रांस की यह हालत है कि उसके पास अपने खाने भर को पर्याप्त भोजन नहीं है। क्या यह सब वैज्ञानिक होने के परिणाम हैं? जिस चीज का भी वैज्ञानिक होने का दावा हो, उसका अध्ययन हमें संबंधित परिस्थितियों और परिणामों के संदर्भ में करना होगा।

अमेरिका में भी परिस्थितियां ऐसी नहीं हैं कि जिनकी हम सिफारिश कर सकें। दूसरी जगहों के कुछ अभावों के कारण उसकी समृद्धि हुई है। उसकी संपन्नता एक और बढ़ रही है, दूसरी ओर यूरोप की अवनति हो रही है। इसे सम्पत्ति का निर्माण नहीं कह सकते। योरप की जरूरतों से लाभ उठाने का मौका अमेरिका को मिल रहा है और उसके सौभाग्य से दो विश्व-युद्ध हुए, जिनका उसने लाभ उठाया। इसलिए जेब कतरी की तरह इसे सम्पत्ति निर्माण नहीं माना जा सकता।

सम्पत्ति उत्पादक

असली सम्पत्ति का उत्पादक तो किसान है। वह एक बीज बोकर सौ उगाता है। ऐसे सच्चे धनोत्पादक आज भूखों मर रहे हैं। उनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत कमजोर है। इसके कई कारण हैं, और हम अपने यहां की परिस्थितियों की विशेष रूप से विवेचना करते हुए इन पर विचार करेंगे।

यूरोप के देशों में डेढ़ सौ वर्ष तक बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के बाद भी हालत यह है कि उन्हें भीख मांगने की नौबत आ गयी है। विशेषकर जर्मनी और फ्रांस की तो बहुत ही गिरी हालत है। अत: जिन देशों का यह दावा है कि उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से आर्थिक और सामाजिक संगठन कर कार्य किया है, उनकी हालत के निराशाजनक पहलू की ज्यादा विवेचना किए बिना हम उनके पिछले अनुभवों से निष्कर्ष निकाल सकते हैं। जब हम यह देखते हैं कि वे अपनी प्राथमिक जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाते, तो उनकी बात छोड़कर हम अपनी परिस्थितियों का अध्ययन करें और अपनी समस्याओं को हल करने के लिए अपने ही साधनों पर भरोसा रखें।

कृषि उद्योगों की कीमतों का प्रभाव

कुछ की ऐसी धारणा है कि महंगाई की वजह से हमारे बहुत से गांव वाले धनी हो रहे हैं। अपनी जरूरतों से ज्यादा पैदा करने वाले किसानों की यह हालत हो सकती है, किंतु जो अपनी जरूरत भर का अनाज भी नहीं पैदा कर पाते, और ऐसों की तादाद ज्यादा है, उनका तो यह हाल नहीं हो सकता। जिनके पास अतिरिक्त माल ही नहीं है, वे बेचें क्या? और बेचने को कुछ न होने से बढ़ी हुई कीमतों से लाभ उठाने की कोई बात ही नहीं उठती।

मूल्य-निर्धारण की पद्धति में भी सुधार की बड़ी जरूरत है। बहुत सी चीजों की कीमतें समान रख ली जाती हैं और फिर अर्थशास्त्री कुछ आंकड़े तैयार कर लेते हैं। तब वे, उस आधार पर खेती की कीमत आंकते हैं। कुछ औद्योगिक चीजों की कीमतों पर विशेष ध्यान देकर सूचियां बनाई जाती हैं। इन औद्योगिक चीजों की कीमतों का आधार संबंधित कच्चे माल की कीमतें होती हैं। उद्योग प्रसूत पक्के माल की कीमतों को नीचे रखने के लिए कच्चे माल की कीमतें नीची रखी जाती हैं। इसलिए अब हम ऐसी सूचियों के सहारे कृषि-उद्योगों की चीजों की कीमतें जोड़ते हैं तो स्वभावत: हम उन्हें कम आंकते हैं। मूल्य निर्धारण का यह सही तरीका नहीं है। कृषि पदार्थो के मूल्य निर्धारण के लिए स्वतंत्र आधार होना ही चाहिए। उपभोक्ताओं अथवा उसके प्रतिनिधियों द्वारा जैसा कि आजकल होता है मूल्य निर्धारण नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए एक बाइसिकल फैक्टरी को लें। दूकानदार उसकी कीमत 150 रुपये रखता है। यह कीमत उत्पादक द्वारा निर्धारित है। मान लीजिए, हम

उपभोक्ताओं को सरकार का बल उपलब्ध है और म साइकिल की कीमत 50 रुपये कर देते हैं। तब तो साइकिल पचास रुपये में ही बिकेगी। अब, निर्माता ये जरूर कह सकेंगे कि चूंकि उपभोक्ताओं ने बिना इस बात का ख्याल किए कि लागत कितनी लगती है - कीमत तय कर दी है, इसलिए साइकिल बनाना मुनाफे का काम नहीं है। इसी प्रकार आज यह कहा जा रहा है कि खेती मुनाफे का धंधा नहीं है। इस स्थिति का कारण यही है कि कीमत का निर्धारण उत्पादक नहीं करता और इस आधार पर जब तक गल्ला वसूली जारी रहेगी तब तक तो वह एक प्रकार की देहातों की कानूनी लूट होगी। जब कोई, बिना लागत का ख्याल किए, मनचाही कीमतें लगाकर चीज उठा ले जाता है तो उसे लूट ही कहा जाएगा! अत: ये सरकारी तरीके वास्तव में गांवों की जनता का उत्पीड़न ही करते हैं। मौजूदा पैसा प्रधान समाज में आज का ऐसा आर्थिक संगठन है। य पद्धति जिसके द्वारा हम कीमतें बढ़ाते ही जाते हैं, अंतत: मुद्रास्फीति की ओर हमें ले जाएगी, अन्यत्र नहीं।

मूल्यों के मानदण्ड में परिवर्तन

कीमतों के परिवर्तनों के कारण हमारा मूल्य मानदण्ड भी बदलता रहता है। मूल्यों के जिस मानदण्ड का हम उपयोग करते हैं, उसके कारण हमारे घर खर्च के बजट में भी बंधन लग जाते हैं। मान लीजिए कोई व्यक्ति 300 रुपये महीने पर गुजारा करता है। खर्चों में प्रधानता किसे दी जाय इसका नियम उसे रखना ही पड़ता है। अब इस आमदनी को सौगुना कर दीजिए, तो पाने वाला समझ नहीं पाता कि उसे कैसे खर्च करे। अत: वह बिना सोचे समझे उसे खर्च करता है। इस मुद्रास्फीति के कारण ही हमारा मूल्य मानदंड बिगड़ जाता है और हमारे पैर उखड़ जाते हैं। भारत में आज ऐसा ही हो रहा है। चोरबाजारी का बोलबाला है। इसी प्रकार से मुद्रास्फीति के अनेक कुफल लोगों को भोगने पड़ रहे हैं। आज मुद्रा बढ़ाने का अर्थ है छापेखाने का उपयोग। विदेशी शासक इन हथकण्डों का उपयोग करते थे तो हम उनकी आलोचना करते थे। किंतु आज हमारे मंत्रियों की आलोचना बर्दाश्त नहीं होती। जब हम अपने को प्रजातंत्री कहते हैं, तो हमें आलोचना का अधिकार है, और मंत्रियों को तो उसका स्वागत करना चाहिए। राष्ट्र की नब्ज पर मंत्रियों की अंगुलियां रहनी चाहिए। जब कोई चोर किसी घर में घुसता है तो वह बत्तियां बुझा देना ही पसंद करता है, किंतु गृहस्वामी को तो अंधेरे की जगह प्रकाश ही अनुकूल होगा। जबतक कि एक प्रजातांत्रिक सरकार है, तबतक जनता को आलोचना का अधिकार है - वह एक प्रकार का कर्तव्य भी है। जब मंत्रियों को उनकी गलतियां बतायी जाएंगी, तभी वे जनता की नब्ज पहचान सकेंगे। यदि सरकार की सच्ची इच्छा है - जनता की सेवा करने की - तब तो वे अधिकाधिक प्रकाश का स्वागत करेंगे। हम यह जानना चाहेंगे कि विशेष उद्देश्य से सरकार को दिए गए हमारे पैसे का कैसा उपयोग होता है। क्या वह देश की उन्नति और उन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए खर्च किया गया है?

आजकल जहां तक हम देख पाते हैं, अंग्रेजी हुकूमत के रवैये और इस राष्ट्रीय सरकार के कामों में कोई विशेष अंतर नहीं है। इसके लिए हम मंत्रियों को दोष न दें। शायद वही शासन तंत्र अभी मौजूद है। देशद्रोही अभी वहां हैं। और दु:ख की बात तो यह है कि हमारे मंत्री, जिनके पास दिशा संकेत कराने के लिए कोई दर्शन नहीं है, स्थायी अफसरों की मर्जी के मुताबिक काम करते हैं। अफसरों के पास एक प्रकार का ढंग जरूर है किंतु उनके पास भी दर्शन नहीं है। आइसीएस वाले जो कहते हैं, मंत्री उस पर राजी हो जाते हैं। नतीजा यह होता है कि अंग्रेजी राजवाला ढर्रा चल जाता है। घास के बीज चुनने वाली बुढ़िया का चित्र उनकी नजरों के सामने नहीं रहता।

औद्योगिकरण और खाद्याभाव

भोजन की समस्या आज की सबसे बड़ी समस्या है। अधिक अन्न उपजाओ के बारे में हमने काफी किताबें व इश्तहार देखे और भाषण सुने, किंतु गल्ले की पैदावार में कोई फर्क न पड़ा। उल्टे, यह हुआ कि अन्न पैदा करने वाली जमीन जो तैयार की गयी, उसके ज्यादा हिस्से में कच्चे माल वाली जींस जैसे तंबाकू, गन्ना, कपास, मूंगफली आदि चीजें बोयी जाने लगी। तो, इस प्रकार एक ओर विस्तार की खेती कम हुई और दूसरी ओर धनी खेती को भी दूसरी जींसों की बुआई से हानि पहुंची। फलस्वरूप लोगों को खाना नहीं मिलता। ऐसी परिस्थिति में हम औद्योगीकरण की बात उठाते हैं। औद्योगीकरण एक विशेष ढंग से हो पाता है। हमारे देहात के भाइयों के भूखे पेट की रोटी वह छीन लेता है! और यह कार्य इतने ज्यादा पैमाने पर हमारे यहां हो रहा है कि हमें करीब 150 करोड़ रुपये का गल्ला ब्राजील और दूसरे देशों से आयात करना पड़ता है, क्योंकि रुपया आज केवल विनिमय का माध्यम न रहकर, कमाई का लक्ष्य बन गया है। नतीजा यह है कि लोग रुपया बढ़ाने में जुटते हैं। रुपये को विनिमय का माध्यम बनकर ही रहना चाहिए। किंतु जब वह स्वयं सम्पत्ति का पर्यायवाची बन जाता है तो खतरे की बात होती है।

भारत में कताई का इतिहास

- कुंदर बलवंत दिवाण

तकली बहुत पुराने जमाने से चलती आ रही है। उसका जिक्र मिस्र, यूनान, उत्तर यूरोप और हिंदुस्तान वगैरह कई देशों की पुरानी तवारीख और साहित्य में मुख्तलिफ नामों से किया गया है। बहुत पुराने जमाने के मिट्टी के बर्तनों के उपर और तस्वीरों में वह दिखाई देती है। सर जॉन मार्शल की मोहेंजोदड़ो और सिंधु सभ्यता नाम की किताब में नीचे लिखी बातें पढ़ने को मिलती हैं :

'मोहेंजोदड़ो में घर-घर कातना जारी था। यह बात खुदाई से हासिल हुई तकलियों की सैकड़ों चकतियों से जाहिर है। उसी तरह यह भी जाहिर है कि कातने का रिवाज गरीबों की तरह ही खा-पीकर सुखी रहने वाले समाज में भी था, क्योंकि चकतियां सस्ती खपरैल की या सीप की और कीमती, साफ, चिकनी और चमकदार चीनी मिट्टी की भी मिली हैं।

उसी जगह पर यह भी कहा गया है कि 'गरम कपड़े' के लिए उन और मामूली कपड़ों के लिए कपास इस्तेमाल किया जाता था।'

इससे साफ अंदाजा लगता है कि उस जमाने के लोगों के लिए तकली कपड़े की जरूरत पूरी करने वाली चीज थी, और छोटे-बड़े सब लोग उसे चलाया करते थे। इसलिए यह साबित हो गया है कि तकली कातने का बहुत पुराना औजार है।

डॉ.बुचानन के ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए सन् 1800 से 1815 में तैयार किए हुए बयान के आधार पर मार्टिन के लिखे हुए अंग्रेजी ग्रंथ 'अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया' में तकली से कातने का बार-बार जिक्र आता है। पूर्णिया के बारे में वह अपने ग्रंथ के तीसरे हिस्से के 322 पृष्ठ पर लिखता है - 'उंचे घरानों की औरतें तकली सक महीन सूत कातती हैं, दूसरा कोई काम नहीं करतीं। कालीगंज के अड़ोस-पड़ोस की औरतें बांस की डंडी के नीचे कच्ची मिट्टी की गोली के वनज लगाकर सूत कातती हैं।'

डॉ.यूर अपनी पुस्तक में लिखते हैं - 'ढाका में इतना अच्छा सूत काता और बुना जाता था कि उसके आगे यूरोप की करामात फीकी पड़ जाती है। उसे देखकर एक बड़ा माहिर कह उठा कि इंग्लैंड के महीन-से-महीन सूत से भी ज्यादा बारीक सूत तकली से किस तरह कातते होंगे और बाद में किस मशीन पर उसे बुनते होंगे, कुछ समझ में नहीं आता!'

आगे वह कहता है - 'ढाका में सब सूत तकली से काता जाता था। महीन सूत के लिए तकुवा करीब 10 ईंच लंबा, सूजा के जितना मोटा चिकना, फौलाद का बना होता है और उस पर नीचे की नोक से करीब एक ईंच उपर एक मिट्टी की गोली लगी होती है। उसकी नीचे की नोक कौड़ी या कछुवे के अंडे के छिलके में टिकाकर व उसे जरा तिरछी पकड़कर सूत काता जाता है। छिलका हिलने न

तकली

मैं कई साल से रोज आधा घंटा मौनपूर्वक तकली कातने के नियम का पालन कर रहा हूं। यह बात तो मैंने एक वाक्य में कह डाली, लेकिन इस छोटे से नियम ने मेरी कितनी रक्षा की है, जिसे शब्दों के जरिये बताना मुश्किल है।

तकली में कर्म-योग तो है ही, लेकिन इसने मुझे खासकर ध्यान-योग सिखाया है। जिन्होंने छः-सात साल के छोटे-छोटे बच्चों को एकाग्रता के साथ तकली कातते हुए देखा है, वे मेरे कहने का अर्थ अच्छी तरह समझ सकेंगे। तकली में मैं गीता का छठवां अध्याय मूर्तिमान देखता हूं।

'नयी तालीम' तकली को ज्ञान-योग की दृष्टि से देखती है। ज्ञान एक अलग चीज है और ज्ञान-योग अलग चीज। नयी तालीम सिर्फ ज्ञान से संतुष्ट नहीं होती। वह ज्ञान-योग चाहती है। उसका यह उद्देश्य भी तकली अच्छी तरह पूरा कर सकती है। लेकिन इसके लिए अच्छे शिक्षकों की जरूरत होगी। और इन शिक्षकों को तकली की भरपूर जानकारी की जरूरत होगी।

पावे इसके लिए उसे गीली मिट्टी के गोले में फंसा देते हैं। अंगूठा व अुंगली के बीच में तकली घुमायी जाती है और बाएं हाथ में पकड़ी हुई रुई उपर उठायी जाती है, जिससे धागा निकलकर सूत बनता जाता है। अपने काम में होशियार आदमी इस तरह एक रुपया भर 180 ग्रेन रुई से चार मील से भी ज्यादा लंबा सूत कात सकता था।'

लंदन के इण्डिया हाउस के अजायबघर में ढाके के सूत का एक नमूना रखा हुआ है। उसके वजन से लंबाई का हिसाब एक पौंड में 115 मील 2 फर्लांग 60 गज है।

डॉ.टेलर के पास सूत का एक नमूना था जिसकी लंबाई 200 गज थी, पर वजन सिर्फ 5 ग्रेन था।

अभी तक उपर जो मजमून दिए गए हैं वे पुराने जमाने की तकली की कहानी सुनाते हैं। आगे जो मजमून दिए जाते हैं, वे आपको इस जमाने की यूरोप और अमेरिका की तकली की कहानी सुनायेंगे।

'इटालियन किसानों की औरतें अपने फुरसत के वक्त और जाड़े में शाम के वक्त अपने घर पर की अंगीठी के पास बैठकर सूत कातने का काम किया करती हैं। यह काम वे रुपया कमाने के लिए नहीं करतीं, वे अपने और अपने कुटुम्ब के लोगों के कपड़ों के लिए सूत कातती हैं।'

'मशीनों का जोर होते हुए भी दूसरी कई बातों की तरह तकलियां भी अपनी पहली शान फिर हासिल कर रही हैं।'

'हंगेरी के पहाड़ों और घाटियों में, हरे-भरे मैदानों में नंगे पैर घूमते-घूमते वहां की औरतें तकली से सूत कातने में इतनी डूब जाती हैं मानो उनकी उंगलियों को आराम कभी मिलता ही नहीं।'

'रुमानिया के ग्वालों की लड़कियां दोनों काम करती हैं, वे जंगल में अपने हाथों को सूत कातने में लगा देती हैं और शाम को गौओं को घर ले आती हैं। तकली का प्रचार सब जगह है।

'घोड़े पर चढ़कर पहाड़ी रास्ता तय करते-करते ग्रीक कुमारी अपने हाथ से तकली पर सूत कात रही है, इस तरह का नजारा दूसरी जगह शायद ही दिखाई देगा। घोड़े की चाल में उसका पूरा भरोसा होने के सबब और घोड़ा उसके इशारे से चलने वाला होने से वह कुमारी ग्रीक औरतों का मशहूर कातने का काम करने में अपना दोपहर का वक्ता गुजारती है।'

'पेरू देश की चोला स्त्री अपने बच्चे को खिलाती-पिलाती हो या अपनी भेड़ों को चराती हो, तो भी कातने का काम करती रहती है, उसके हाथ की तकली हरदम घूमती ही रहती है, उसके जरिये वह कच्ची उन के गोले से मोटा धाग कातती है।'

इन बातों से दिखाई देगा कि यूरोप और अमेरिका में भी देहाती जिंदगी में तकली ने कितने प्रेम और आदर की जगह ले ली है। घोड़े पर चढ़कर पहाड़ को लांघते-लांघते तकली पर सूत कातने वाली ग्रीक कुमारी तकली की खूबियों की एक मजेदार मिसाल है।

तकली एक ऐसा अजीब औजार है कि जिसके जरिये काम और दिल-बहलाव दोनों एक साथ हो जाते हैं। बाबू राजेंद्रप्रसाद इसलिए तकली के बारे में कहते हैं :

'तकली देखने में छोटी-सी चीज है, लेकिन उसके अंदर जबर्दस्त ताकत भरी हुई है। भाप और मशीन के इस जमाने में अपनी छोटी और पुरानी चीज को लोग तुच्छ नजर से देखते हैं। लेकिन समझदार लोगों के लिए यह एक हमेशा सोचने की बात होगी कि कल-कारखानों का ईजाद करने वाला बड़ा है या तकली का?

करोड़ों की आबादी वाले अपने इस बड़े देश के कपड़े के लिए जरूरी सूत हम तकली की मदद से कात सकते हैं। अगर सब लोग तकली से कातना शुरू करें तो वह एक प्यारी चीज बना जाएगी और इस तरह कपड़े का सवाल हल करने के साथ ही हम समाज में एक नया फैशन भी चला सकेंगे।' तकली से साभार

बिजलीकरण

हमारी वर्तमान योजनाओं का भी तथ्यों से कोई नाता नहीं। उदाहरण के लिए दक्षिण में, जहां इस बात का बहुत प्रचार हो रहा है कि गांवों में हाइड्रो इलेक्ट्रिक शक्ति का उपयोग किया जाए, बिजली पम्प से पानी निकालने की प्रथा जारी की गयी। तीन चार साल के बाद हम यह देखते हैं कि एक समय जो जमीन सरसब्ज थी वह उजड़ पड़ी है और किसानों ने कोयला बनाना शुरू कर दिया है! जे बिजली पम्प का खर्च उठा सकते हैं, ऐसे बड़े आदमियों को तो पानी मिल जाता है, पर गरीब किसानों के खेतों को पानी ही नहीं मिल पाता। पम्पों की बदौलत उनके कुएं, तालाबों का पानी समाप्त हो गया। पानी का स्तर क्रमश: नीचे उतर जाने के कारण पेड़ सूख गए और उनका कोयला बनने लगा। किसान खेती नहीं कर सकते क्योंकि सतह की जमीन झाड़ झंकर नष्ट हो जाने से धुल गई है। इन योजनाओं पर करोड़ों रुपया खर्च हुआ है किंतु गरीबों की दृष्टि में तो यह सब एकदम बेकार हुआ। आज का आर्थिक संगठन केवल अल्पसंख्यक सम्पन्नों के लिए अनुकूल है। इस प्रकार यह योजना जन-साधारण से लगाव न रखने वाली अदूरदर्शितापूर्ण ही रही है।

खादी रक्षा अभियान

महात्मा गांधी के क्रांतिकारी 'खादी विचार' को सुरक्षित और परिपुष्ट करने के लिए खादी रक्षा अभियान प्रारंभ किया गया है। अभियान का स्वरूप सत्याग्रह का है। इसलिए वह भावात्मक है। किसी का विरोध या किसी को परेशान करने जैसा अभावात्मक नहीं है। सत्याग्रह में दबाव को स्थान नहीं, प्रभाव को स्थान है। देश की खादी संस्थाओं द्वारा 16 अगस्त के आयोजन के परिणामस्वरूप नतीजा यह रहा कि खादी ग्रामोद्योग आयोग के सीईओ और डायरेक्टर के.सी. केंद्रीय रक्षा अभियान समिति के संचालक श्री महेशदत्त शर्मा से मिलने 13 अगस्त 2012 को खादी आश्रम पानीपत गए थे। वहां विस्तार से सार्थक चर्चा हुई।

इसके उपरांत 21 अगस्त 2012 को दिल्ली में आयोग के अध्यक्ष, सदस्य पूर्व झोन सीईओ तथा डायरेक्टर के.सी. मुझसे मिलने आए। उस समय जो बातें हुई उसकी संक्षिप्त रिपोर्ट आयोग की तरफ से आयी है। हालांकि चर्चा में उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं का समावेश उसमें छूट गया है। बावजूद इसके यह पहला ही अवसर है कि आयोग की ओर से सकारात्मक सोच का लिखित आश्वासन दिया गया है।

यह निश्चित है कि सभी समस्याओं का निराकरण तुरंत नहीं हो सकेगा, कुछ समय लगेगा। किंतु समय-सीमा निर्धारित होती है, तो प्रयत्नों में गतिशीलता रहती है। फिर भी आयोग और भारत सरकार संस्थाओं के प्रति संवेदनशील होकर सहानुभूतिपूर्वक गांधीजी की विरासत को अक्षुण्ण रखने के लिए यदि प्रामाणिक प्रयत्न करना चाहती है तो 31 अक्टूबर 2012 तक का समय दिया जा सकता है। विदित हो कि आयोग ने दिनांक 17 सितंबर 2012 के पूर्व ही समस्याओं के निराकरण हेतु अपनी कटिबद्धता एवं प्रतिबद्धता प्रेषित पत्र में प्रदर्शित की है। सत्याग्रह में करुणा तत्व का दर्शन निहित है। खादी ग्रामोद्योग आयोग के आज के तंत्र व आज की कार्यपद्धति से लिए अनुभव के आधार पर विश्वास तत्व को सम्मुख रखकर उपरोक्त निर्धारित समय दिया जा सकता है। इस अवधि में निर्धारित समन्वय समिति की गति, प्रगति एवं नीति का पता भी लग जाएगा तथा स्थितियां स्पष्ट हो जाएंगी।

अत: उक्त अवधि में जो कार्यक्रम सोचे गए थे, परिस्थितिवश उनमें किंचित परिवर्तन करना उचित होगा। दिनांक 11 सितम्बर विनोबा जयी को प्रतीकात्मक रूप से सभी भंडार बंद रखे गए। प्रार्थना सभा, विचार-प्रसार आदि का आयोजन किया गया। आगामी 2 और 3 नवंबर 2012 को खादी रक्षा अभियान की सभा में क्रमश: अगले कार्यक्रम की दिशा तय की जाएगी। यह निश्चित है कि जब तक देश की खादी संस्थाओं की स्वतंत्रता, स्वायत्तता तथा आत्मसम्मान पूर्ववत हासिल नहीं होता, तब तक यह सत्याग्रह अभियान जारी रहेगा। अस्तु, निवेदन है कि देश की सभी संस्थाएं इस अभियान को सफल बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगाएं।

कृपया आपके क्षेत्र की संस्थाओं की जो प्रमुख समस्याएं और दिक्कतें हैं उनकी जानकारी निम्नलिखित पते पर यथाशीघ्र भेजें।

संयोजक

खादी मिशन

राजस्थान खादी ग्रामोद्योग संस्था संघ

बजाज नगर, जयपुर - 302015

निर्णायक सभा

पानीपत। खादी रक्षा अभियान संचालन समिति एवं केंद्रीय समिति खादी रक्षा संचालन अभियान की संयुक्त सभा 2 और 3 नवम्बर 2012 को खादी आश्रम पानीपत में आयोजित की गई है। सभा 2 नवम्बर को दोपहर 3 बजे प्रारंभ होगी और 3 नवम्बर को दोपहर तक चलेगी। खादी मिशन के संयोजक श्री बालविजय ने बताया कि खादी रक्षा अभियान की दृष्टि से यह निर्णायक सभा है। इस सभा में खादी रक्षा अभियान की प्रगति और आगे का कार्यक्रम तैयार किया जाएगा। सभा में भाग लेने के लिए निम्नलिखित पते पर पूर्व सूचना देने से व्यवस्था करने में सुविधा होगी :

श्री महेश दत्त शर्मा, संयोजक, केंद्रीय समिति, खादी रक्षा संचालन अभियान

खादी आश्रम

जी.टी.रोड, पानीपत - 132104 हरियाणा

फोन नं. 0180 2666195, 2664930, मोबाइल नं. 09812034834

सर्वधर्म प्रार्थना सभा आयोजित

दिल्ली। तिब्बत के धर्मगुरु दलाई लामा के 77वें जन्मदिन पर तिब्बत हाउस के तत्वावधान में अम्बेडकर विश्वविद्यालय कश्मीरी गेट परिसर में सर्वधर्म प्रार्थना सभा और वृक्षारोपण का आयोजन किया गया। इस अवसर पर तिब्बत हाउस के निदेशक, अम्बेडकर विश्वविद्यालय के कुलपति सहित अनेक गणमान्य नागरिक उपस्थित थे।

खादी नीति में संशोधन के लिए निवेदन

खादी सेवक श्री नरेंद्र दुबे ने दिनांक 11 दिसम्बर 1996 को यह पत्र खादी ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष को लिखा था। इस पत्र में जाहिर चिंता आज भी ज्यों की त्यों खादी संस्थाओं के समक्ष उपस्थित है। इसे यहां दिया जा रहा है :

भारत के स्ववतंत्रता आंदोलन में खादी आजादी का बाना और चरखा अहिंसा का प्रतीक था। खादी के द्वारा आजादी का संदेश गांव के गरीब से गरीब व्यक्ति तक पहुंचा। गांधीजी ने पंरपरागत चरखे से लाखों कत्तिनों को जीवन निर्वाह पारिश्रमिक प्रदान करने का पराक्रम किया था। यह सारा कार्य जनता से प्राप्त दान से किया गया।

इतना उल्लेखनीय कार्य करने के बाद सन् 1944 में गांधीजी ने चरखा संघ के नवसंस्करण का विचार रखा और खादी को समग्र ग्राम सेवा और ग्राम स्वावलंबन की दिशा में मोड़ने का प्रयास किया। दुर्भाग्य से गांधीजी को इस प्रयोग को आगे बढ़ाने का अवसर नहीं मिला।

स्वराज्य के पश्चात् भारत सरकार ने खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग स्थापित किया और बेरोजगारों को रोजगार देने का लक्ष्य रखकर खादी को सरकारी सहायता दी जाने लगी। खादी आयोग पिछले 50 वर्षो से इसी उद्देश्य से काम कर रहा है। खादी सेवक भी इसमें सरकार के सहभागी बने हैं। स्वराज्य के इन पैंसठ सालों में स्वतंत्र भारत की सरकार की सहायता से खादी का किस दिशा में कितना विकास हुआ है इसका समुचित मूल्यांकन करने का समय आया है। इस अध्ययन और मूल्यांकन के आधार पर 21वीं शताब्दी के लिए खादी आंदोलन की दिशा और लक्ष्य निर्धारित करने की जरूरत है। खादी उत्पादन, रोजगार सृजन, सामाजिक-आर्थिक न्याय, जीवन-निर्वाह पारिश्रमिक, सरकारी सहायता का स्वरूप, नैतिक स्तर में सुधार जैसे बिंदुओं के आधार पर पचास वर्षो के खादी कार्य का मूल्यांकन करना चाहिए।

खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदनों में यह जानकारी मिलती है कि :

1. सन् 1965-66 में खादी के द्वारा 19.67 लाख लोगों को रोजगार दिया जा रहा था जो वर्ष 1994-95 में घटकर 13.19 लाख रह गया। अंबर चरखा जैसे उन्नत साधन की खोज के बावजूद रोजगार में गिरावट आई।

2. सन् 1985-86 में देश में सूती, उनी, रेशमी खादी का कुल उत्पादन 10.5 करोड़ मीटर था जो सन् 1994-95 में घटकर 9 करोड़ मीटर रह गया। उत्पादन में यह गिरावट अंबर चरखा, बैंक वित्त और राज्य तथा केंद्र सरकार की विभिन्न सहायता योजनाओं के बावजूद आई। सन् 1951 में देश के कुल वस्त्र उत्पादन में खादी का योगदान 1.5 प्रतिशत था जो सन् 1994-95 में घटकर 0.04 प्रतिशत रह गया।

3. अंबर चरखे पर कर्ता करने वाली पूर्णकालिक कत्तिनों को वर्ष 1994-95 में रुपये 1418 वार्षिक और परम्परागत चरखे पर कातने वाली अंशकालिक कत्तिनों को रु. 245 वार्षिक पारिश्रमिक प्राप्त हुआ। खादी कार्यकर्ताओं को औसतन 1150 रुपये मासिक वेतन प्राप्त हुआ।

इसके साथ ही गत आठ वर्षो में खादी कार्यकर्ताओं की संख्या भी 50 हजार से घटकर 38 हजार रह गयी।

यह सब इस सबके बावजूद हुआ कि सर्वोच्च न्यायालय ने खादी को उद्योग माना और कत्तिन-बुनकरों को न्यूनतम मजदूरी, प्रॉविडेंट फंड, ग्रेच्युटी, स्वास्थ्य बीमा योजना आदि देना कानूनन अनिवार्य किया। किंतु देश की खादी संस्थाएं कत्तिन बुनकरों के लिए श्रम कानूनों का पालन करने में समर्थ नहीं हैं। गत वर्षो में सरकार खादी क्षेत्र के अनुकूल श्रम कानून बनाने में भी असमर्थ रही है।

4. पहली पंचवर्षीय योजना में खादी ग्रामोद्योग के लिए कुल योजना व्यय का 1.8 प्रतिशत राशि का प्रावधान किया था जो आठवीं योजना तक घटकर मात्र 0.03 प्रतिशत रह गया।

यद्यपि खादी के उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई लेकिन महंगाई बढ़ती रहने से खादी की कीमतों में सतत् वृद्धि होती रही। बैंक वित्त पर ब्याज, बीमा, मार्जिन वृद्धि के कारण भी भाव-वृद्धि हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् 980-81 में 8 करोड़ मीटर खादी बिक्री पर केंद्र सरकार ने 12.98 करोड़ का अनुदान बिक्री रिबेट के लिए दिया जबकि सन् 1994-95 में 9 करोड़ मीटर खादी बिक्री पर 82 करोड़ का अनुदान देना पड़ा। इस प्रकार खादी को प्रति मीटर 9 रुपया अनुदान भारत सरकार ने दिया। राज्य सरकारों द्वारा दिया गया रिबेट और उत्पादन अनुदान इससे अलग है। इसके बावजूद खादी संस्थाओं के पास उपलब्ध पूंजी के बराबर का स्टॉक रहता है। अर्थात उत्पादन-बिक्री पूंजी अनुपात ठीक नहीं है।

रिबेट राशि समय पर न मिलने से तरल पूंजी अनुपात हमेशा खराब रहता है और इसके कारण भी उधार-बिक्री अनिवार्य बन गई है। उधार कच्चा माल खरीद में भी संस्थाओं को घाटा होता है, खादी भी महंगी और निम्न गुण स्तर की बनती है।

5 नैतिक मूल्यों की दृष्टि से एक समय चरखा संघ और खादी आयोग आदर्श थे। किंतु गत कुछ वर्षो में खादी आयोग, खादी बोर्ड्स और खादी संस्थाओं के नैतिक स्तर में भी गिरावट आई है। कच्चा माल खरीद, फर्जी उत्पादन, फर्जी बिक्री, अतिरिक्त मार्जिन, सरकारी बिक्री आदि में अनुचित तरीकों का इस्तेमाल, कताई-बुनाई में अनधिकृत बिजली का उपयोग, रंगाई, छपाई, प्रशोधन आदि में कमीशन लेना आदि अनेक विकृतियां आम हो गई हैं।

सारा खादी आंदोलन सरकार पर इस कदर आश्रित हो गया है कि समय पर पूंजी या रिबेट न मिलने से उत्पादन और रोजगार तुरंत गिर जाता है।

बैंक ब्याज वाली महंगी पूंजी, बीमा, मार्जिन वृद्धि, मूल्य वृद्धि आदि के कारण खादी की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई है और फुटकर बिक्री में कठिनाइयां आ रही हैं। इन कारणों से एक के बाद एक प्रमाणित कार्य करने वाली खादी संस्थाएं बीमार हो रही हैं, टूटने की कगार पर हैं और अप्रमाणित कार्य करने वाली संस्थाओं की भरमार हो गई है।

वस्तुत: खादी के समक्ष उपस्थित संकट गत अनेक वर्षो में अपनायी गयी कार्य दिशा का परिणाम है। इसलिए जब तक नीतियों में संशोधन नहीं होगा खादी का वर्तमान संकट कभी समाप्त नहीं होगा। इस निवेदन में हमने जो तथ्य और आंकड़े दिये हैं वे खादी आयोग द्वारा प्रकाशित वार्षिक प्रतिवेदनों से ही लिये गये हैं। इससे यह स्पष्ट ही है कि आयोग स्वयं भी इनत थ्यों से परिचित है।

इस तथ्यान्वेषण के परिप्रेक्ष्य में खादी ग्रामोद्योग के लक्ष्य और उद्देश्यों में नीतियों और कार्य प्रणालियों में बुनियादी परिवर्तन करने की जरूरत है। इस दृष्टि से हमारा निवेदन है कि :

1. खादी ग्रामोद्योग का लक्ष्य ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करना है। इसके लिए अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा जैसी बुनियादी जरूरतों में देश के प्रत्येक गांव को स्वावलंबी और परस्परावलंबी बनाना ही खादी ग्रामोद्योगों का उद्देश्य होना चाहिए।

ग्रामों को स्वावलंबी बनाने की प्रक्रिया में रोजगार सृजन तो होगा ही। जरूरतमंद लोगों को रोजगार देना मात्र ही खादी का उद्देश्य नहीं हो सकता।

ग्राम स्वावलंबन का उद्देश्य स्वीकार करने पर खादी-ग्रामोद्योग आयोग की नीतियों में, कार्य पद्धति में, ऋण और अनुदान नियमों में, लक्ष्य निर्धारण, अंकेक्षण आदि सभी में आवश्यक परिवर्तन करने होंगे।

2. ग्राम स्वावलंबन के लिए मानक निर्धारित करने होंगे। देश में औसतन 15 मीटर प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष वस्त्र उपभोग होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह औसत 10 मीटर है। गांव में सभी को पर्याप्त वस्त्र पूर्ति करने के लिए कम से कम 20 मीअर वस्त्र प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष की आपूर्ति होनी चाहिए। इसमें कम से कम 50 प्रतिशत वस्त्र ग्रामवासी स्वयं तैयार कर लें अर्थात् 10 मीटर वस्त्र बनाकर उपभोग कर लें, ऐसा लक्ष्य निर्धारित करना युक्तिसंगत है।

इस दृष्टि से 500 की आबादी के गांव में 5000 मीटर खादी वस्त्र बने और वहीं इसका उपभोग हो जाए ऐसी व्यूह रचना करनी चाहिए।

परस्परावलंबन की योजना के अंतर्गत भविष्य में बदलौन प्रणाली से विभिन्न गुण स्तर और किस्मों के वस्त्रों का परस्पर आदान-प्रदान किया जा सकता है।

3. आदर्श अर्थ व्यवस्था में ग्राम स्वावलंबन का उत्तरदायित्व तो ग्रामवासियों का ही है, लेकिन जैसे प्रारंभ में विदेशी उद्योंगों से स्वदेशी उद्योगों को बचाने के लिए सरकार को नीति बनानी होती है, वैस ही शहरी केंद्रित उद्योगों से ग्रामीण उद्योगों को बचाने और बढ़ाने के लिए भी प्रारंभ में नीतिगत समर्थन जरूरी है।

खादी के लिए ग्रामों में कपास सहजता से उपलब्ध है, रेचाई, धुनाई, कताई, बुनाई, धुलाई, रंगाई, छपाई के साधन भी सहजता से उपलब्ध हो सकते हैं। लोगों के पास खेती पशुपालन के अतिरिक्त काम भी नहीं है। इसलिए कुशल संगठन और संयोजन से ग्रामों में वस्त्र स्वावलंबन केंद्र कायम किए जा सकते हैं। लोगों को कताई, बुनाई आदि प्रवृत्तियों में प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है।

ग्रामीणों को वस्त्र स्वावलंबन के लिए उत्साहित और प्रेरित करने के लिए सेवा संस्थान की और सरकारी सहयोग की जरूरत है।

विनोबाजी ने इस संबंध में सुझाव दिया था कि :

1. स्वावलंबी कताई करने वालों को सरकार साधन खरीदने के लिए बिना ब्याज का ऋण प्रदान करे।

2. कताई-बुनाई में प्रशिक्षण करने का व्यय सरकार उठाए जैसा कि वह शिक्षा का व्यय वहन करती है तथा

3. प्रति स्वावलंबी व्यक्ति को 10 मीटर तक की बुनाई मुफ्त करा दे अर्थात बुनाई उत्पादन प्रदान करे। इससे हाथ बुनकरों को रोजगार की और मजदूरी की ग्यारंटी मिल जाएगी।

इस पद्धति से 500 की आबादी के ग्राम को 10 मीटर प्रति व्यक्ति वस्त्र उत्पादन द्वारा स्वावलंबी बनाने के लिए सरकार को लगभग 25000/- रुपये बुनाई उपदान के रूप में देनें होंगे। वर्तमान बिक्री रिबेट पद्धति में 5 हजार मीटर खादी का न्यूनतम मूल्य लगभग 2 लाख रुपये होता है और 25 प्रतिशत बिक्री रिबेट देने पर लगभग 50 हजार रुपये का भार सरकार पर पड़ता है।

ग्राम स्वावलंबन योजना से सरकार का भार भी कम होगा, खादी में जनसहयोग, जनभागीदारी बढ़ेगी और अंतत: खादी आंदोलन जन आंदोलन बन सकेगा।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि सन् 1964 में विनोबाजी के सुझाव पर मुफ्त बुनाई योजना खादी आयोग ने लागू की थी किंतु कुछ ही वर्षो बाद इसे समाप्त कर दिया गया। वस्तुत: उस समय इसे बिक्री रिबेट के विकल्प के रूप में चलाया गया न कि ग्राम स्वावलंबन के लिए। उस समय 10 मीटर तक की मुफ्त बुनाई की मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखा गया। वस्तुत: रोजगारी खादी को मुफ्त बुनाई योजना से चलाना संभव नहीं था। अत: बुनाई उपदान का सीधा और प्रत्यक्ष संबंध ग्राम स्वावलंबन से ही होना चाहिए। बुनाई उपदान वस्त्र स्वावलंबन के लिए मात्र 10 मीटर प्रति व्यक्ति तक ही सीमित रहना चाहिए। प्रारंभ में इसे केवल सूती खादी के लिए लागू करना चाहिए।

हमारा विनम्र निवेदन है कि कृपया व्यापक राष्ट्रीय हित में खादी आंदोलन की दिशा में तत्काल संशोधन करने की पहल करें।

-नरेंद्र दुबे

खादी की नीलामी

भारत के इतिहास में शायद ऐसा पहली बार हो रहा है जब खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा देश के बड़े शहरों में संचालित किए जा रहे खादी भवनों में सड़ रहे खादी और ग्रामोद्योगी माल को नीलामी के जरिये निकाला जा रहा है। पहले भोपाल स्थित खादी भवन के माल को नीलाम करने के लिए विज्ञापन प्रकाशित किया गया और अब खादी ग्रामोद्योग आयोग के कोलकाता स्थित भवन के माल की नीलामी प्रक्रिया शुरू की गई है। 27 जुलाई 2012 का जारी विज्ञापन में करीब 41 लाख रुपये की खादी और 4 लाख रुपये की ग्रामोद्योगी वस्तुएं हैं। ज्ञातव्य है कि जब खादी ग्रामोद्योग आयोग के भोपाल स्थित भवन के माल की नीलामी प्रक्रिया शुरू हुई तो उसमें केवल पांच ही व्यापारियों ने दिलचस्पी दिखाई। जब नीलामी प्रक्रिया में भाग लेने की बारी आयी तो केवल दो ही व्यापारी उपस्थित हुए। शेष व्यापारी माल की दशा देखकर भाग खड़े हुए। अब कोलकाता भवन ने अपने यहां खराब हो चुके खादी के माल को नीलाम करने का निर्णय किया है। लगभग 40 लाख रुपये की खादी में से 11 लाख रुपये की सूती खादी, 12 लाख 50 हजार रुपये की रेशमी खादी, 75 हजार रुपये की उनी खादी और 4 लाख रुपये का पोलीवस्त्र है। खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग ने विगत वर्षो में बाजार के रुख को पहचानते हुए रेडीमेड वस्त्रों की बिक्री पर ज्यादा जोर देने की योजना बनाई थी। लेकिन इस नीलामी में करीब 12 लाख रुपये के रेडीमेड वस्त्र भी शामिल हैं। साथ ही करीब 3 लाख रुपये का ग्रामोद्योग और 1 लाख रुपये की हस्तशिल्प वस्तुएं भी है, जिसे नीलाम किया जाना है। इसी प्रकार दार्जिलिंग स्थित ग्रामशिल्प से लगभग 1 लाख 25 हजार रुपये के खराब हो चुके खादी ग्रामोद्योग माल को नीलाम किया जाना है। पूरे देश में लगभग 3 हजार 5 सौ खादी ग्रामोद्योगी संस्थाएं हैं, जिनके पास करोड़ों रुपये का खादी तथा ग्रामोद्योग का स्टॉक है।

खादी आयोग ने 40 करोड़ रुपये लौटाए

दिल्ली। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र की खादी ग्रामोद्योगी संस्थाओं के लिए खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा स्वीकृत 40 करोड़ 35 लाख रुपये के अनुदान को लौटा दिया गया है। खादी संस्थाओं को पूर्व में दी गयी राशि के उपयोग करने के आधार पर यह राशि लौटाई गई है। यह जानकारी श्री वीरभद्रसिंह ने दी।

भारत में ब्रिटिश राज

- कार्ल मार्क्स

हिन्दुस्तान के अतीत का राजनीतिक पहलू किना ही परिवर्तनशील क्यों न रहा हो, उसकी सामाजिक स्थिति अतिप्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी की पहली दशाब्दी तक स्थायी रही। करघा और चरखा इस सामाजिक ढांचे की धुरी थे, जिनसे निरंतर असंख्य बुनकर तथा सूत कातने वाले पैदा होते रहते थे। पुरातन काल से यूरोप हिंदुस्तानी बुनकरों द्वारा तैयार किए हुए बेहतरीन कपड़े मंगवाता रहा और बदले में अपनी मूल्यवान धातुएं भेजता रहा, जो सुनार के पास पहुंचती रहीं। सुनार भारतीय समाज का आवश्यक अंग होता है, क्योंकि वह समाज अलंकार-भूषण का ऐसा महान प्रेमी है कि निम्नतम वर्ग के लोग भी, जो प्राय: नंगे घूमते हैं, सोने की बालियां या गले में कोई सोने का जेवर पहने रहते हैं। हाथों और पांवों की उंगलियों पर अंगूठियां पहनने का आम रिवाज है। स्त्रियां और बच्चे अक्सर सोन और चांदी के मोटे-मोटे कंगन और पायजेब पहनते थे और उनके घरों में सोने और चांदी की बनी देवताओं की छोटी-छोटी मूर्तियां रखी मिलती थीं। अंग्रेज विजेता ने आकर हिंदुस्तान के करघे को तोड़ा और चरखे को तबाह किया। इंग्लैंड ने पहले हिंदुस्तान के बने सूती कपड़े को यूरोप के बाजार से बाहर निकाला, फिर हिंदुस्तान में अपना सूत भेजा और अंत में सूती कपड़ों की उस जन्मभूमि को अपने सूती कपड़ों से पाट दिया। सन् 1818 और 1836 के बीच ग्रेट ब्रिटेन से हिंदुस्तान भेजे जाने वाले सूत का परिमाण 5,200 गुना बढ़ गया। 1824 में अंग्रेजी मलमल का हिंदुस्तान को निर्यात ज्यादा से ज्यादा दस लाख गज रहा होगा, पर 1837 में वह बढ़कर 6 करोड़ 40 लाख गज से भी ज्यादा हो गया। साथ ही ढाका की आबादी 1,50,000 से कम होकर 20,000 रह गयी। पर ब्रिटिश शासन का सबसे बुरा परिणाम यह नहीं था कि हिंदुस्तान के ऐसे नगर, जो कपड़े के उद्योग के लिए प्रसिद्ध थे, तबाह हो गए। ब्रिटिश भाप और ब्रिटिश विज्ञान ने हिंदुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कृषि-उत्पादन तथा हस्त-उद्योग के समागम को जड़ से उखाड़ फेंका।.....

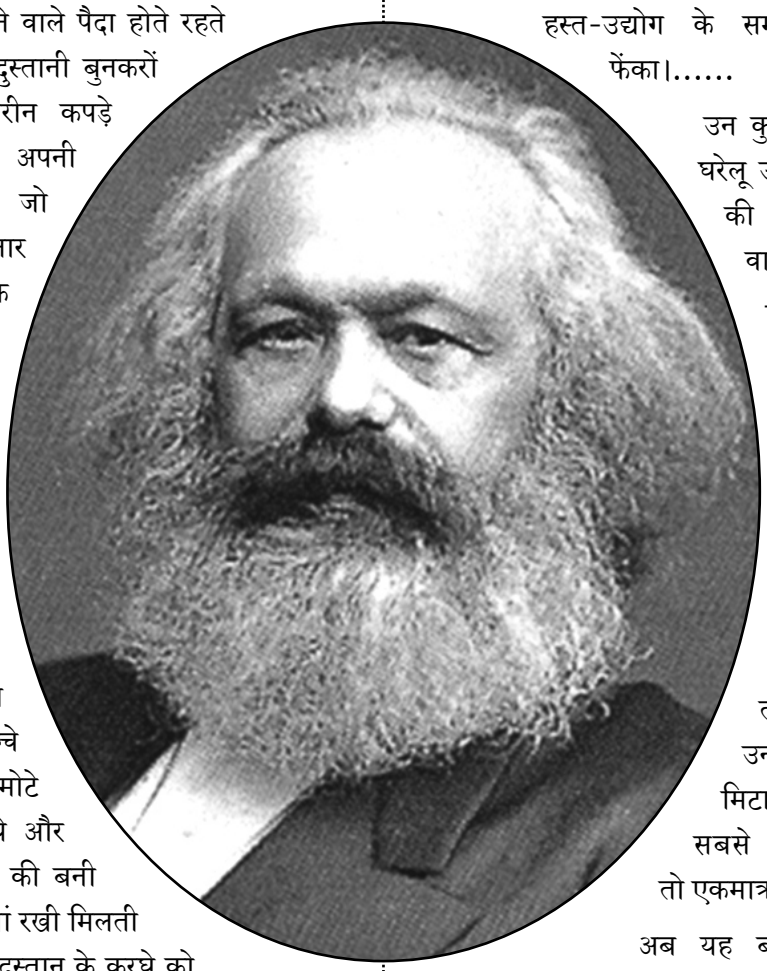

उन कुटुम्ब-समुदायों का आधार था घरेलू उद्योग - हाथ की बुनाई, हाथ की कताई तथा हाथ की जुताई वाली खेती का विचित्र सम्मिलन - जिससे उन्हें अपने पांवों पर खड़े रहने की शक्ति मिलती थी। अंग्रेजों की दस्तंदाजी ने सूत कातने वाले को लंकाशायर में और बुनकर को बंगाल में बैठाकर या भारतीय बुनकर और भारतीय सूत कातने वाले दोनों का सफाया करके उन छोटे-छोटे अर्धबर्बर तथा अर्ध सभ्य समुदायों को, उनका आर्थिक आधार तोड़कर, मिटा दिया और इस प्रकार एशिया में सबसे बड़ी और सच कहें तो एकमात्रा सामाजिक क्रांति पैदा कर दी।

अब यह बात मानव-भावना के लिए क्लेशकर अवश्य है कि इन असंख्य उद्योगशील, पितृसत्तात्मक तथा निरीह सामाजिक संगठनों को तोड़ा गया और उनकी इकाइयों में उनका विघटन किया गया, उन्हें दु:ख के अथाह सागर में डाल दिया गया और उनका हर सदस्य अपनी प्राचीन सभ्यता तथा अपने परम्परागत जीविका के साधनों को खो बैठा।

मार्क्स एंगेल्स पुस्तक से साभार

शहरों से अधिक खर्च करते हैं भारत के गांव

नईदिल्ली। दो दशक पहले शुरू हुए आर्थिक सुधारों के बाद पहली बार शहरों की तुलना में गामीण भारत में खपत ज्यादा तेजी से बढ़ी है। एक अध्ययन में कहा गया है कि गांवों में खपत बढ़ने की मुख्य वजह गैर कृषि रोजगार के ज्यादा अवसरों के सृजन की वजह से परिवारों की आमदनी बढ़ना है।

साख निर्धारण एजेंसी क्रिसिल के अध्ययन के अनुसार 2009-2010 और 2011-2012 के दौरान ग्रामीण भारत का अतिरिक्त खर्च उपभोग 3.75 लाख करोड़ रुपये रहा है, जो शहरी लोगों के अतिरिक्त उपभोग 209 लाख करोड़ रुपये से कहीं अधिक है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि ग्रामीण भारत में खपत या खर्च में इजाफे की मुख्य वजह गैर कृषि रोजगार के अवसरों की वजह से ग्रामीण परिवारों की आमदनी बढ़ना है। इसके अलावा सरकार भी रोजगार सृजन योजनाओं के जरिये ग्रामीण क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित कर रही है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के आंकड़ों के अनुसार 2004-2005 से 2009-2010 के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में निर्माण क्षेत्र के रोजगार में 88 फीसदी का इजाफा हुआ है। वहीं इस दौरान कृषि क्षेत्र में कार्यरत लोगों की संख्या 24.9 करोड़ से घटकर 22.9 करोड़ रह गई है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि इसके अलावा गांवों से शहरों का रुख करने वाले लोगों को बुनियादी ढांच निर्माण परियोजनाओं में रोजगार के अवसर सुलभ हुए हैं। इन लोगों द्वारा गांवों में अपने परिवारों को धन भेजा जा रहा है। जिससे खपत में इजाफा हुआ है।

अध्ययन में बताया गया है कि ग्रामीण खपत में जो एक बड़ा बदलाव देखने को मिला है वह यह कि अब लोग जरूरत के अलावा अन्य सामान भी खरीद रहे हैं। रिपोर्ट के अनुसार, प्रत्येक दो ग्रामीण परिवारों में से एक के पास मोबाइल फोन है। यहां तक कि देश के बिहार और उड़ीसा जैसे गरीब राज्यों में भी प्रत्येक तीन में एक ग्रामीण परिवार के पास मोबाइल फोन है।

क्रिसिल ने कहा कि 2009-2010 में 14 फीसदी ग्रामीण परिवारों के पास दोपहिया था। यह आंकड़ा 2004-2005 की तुलना में दोगुना है। अध्ययन में कहा गया है कि युवा आबादी, बढ़ता आय स्तर तथा कई टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की सीमित पहुंच का मतलब है कि ग्रामीण खपत मांग का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनी रहेगी।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना मनरेगा से रोजगार के स्तर में उल्लेखनीय इजाफा हुआ है। इससे ग्रामीण परिवारों को अपनी परंपरागत कृषि आय की पूर्ति करने में मदद मिली है।

रासायनिक खाद

रासायनिक खाद के कारखाने एक और महंगा शिगूफा है। फर्टिलाइजर्स का प्रयोग दवाओं की तरह होता है। वे जमीन के लिए एक ताकत की दवा की तरह हैं और उन्हें रोज रोज नहीं देना चाहिए। कमजोरी की हालत में डॉक्टर कुछ बूंद ब्राण्डी देता है, किंतु उसे रोज तो नहीं पिया जा सकता ? मद्यपी की उत्तेजना को शक्ति नहीं कहा जा सकता। हम यह नहीं कहते कि फर्टिलाजर का उपयोग ही न किया जाए। किंतु उनका उपयोग ठीक ढंग से विशेषज्ञों की सलाह और निर्देश के साथ होना चाहिए। फर्टिलाइजर के उपयोग के पहले जमीन की जांच तो होनी चाहिए। एक एक गज पर जमीन की उत्पादक शक्ति में अंतर हो जाता है। अत: फर्टिलाइज देने के पहले एक एक वर्ग गज जमीन की जांच होनी चाहिए और किस जगह कौन सा रासायनिक खाद देना चाहिए यह तय होना चाहिए। यह बहुत बड़ा काम है। हमारे देश में जहां आदमियों के डॉक्टरों की कमी है, वहां जमीन के डॉक्टरों की एक पूरी सेना तैयार किए बिना फर्टिलाइजर का प्रचार करना एक भूल है। यदि हम बिना जमीन की जांच किए किसी जगह गलत फर्टिलाइजर का उपयोग करेंगे तो वहां एक दिन मरुस्थल भी नजर आ सकता है। अपनी आर्थिक नवरचना के समय हम एक क्षण के लिए भी अपने यहां की परिस्थितियों को भूलकर आगे नहीं बढ़ सकते।

प्रेरक कहानियाँ

सच्ची उपासना

एक बार गुरु नानक सुल्तानपुर पहुंचे। वहां उनके प्रति लोगों की श्रद्धा देख वहां के काजी को ईर्ष्या हुई। उसने सूबेदार दौलतखां के खूब कान भरे और शिकायत की कि यह कोई पाखण्डी है, इसीलिए आज तक नमाज पढ़ने कभी नहीं आया। सूबेदार ने नानकदेव को बुलावा भेजा, किंतु उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। जब सिपाही दुबारा बुलाने आया, तो वे उसके पास गये। उन्हें देखते ही सूबेदार ने डांटते हुए पूछा, ''पहली बार बुलाने पर क्यों नहीं आए ?''

''मैं खुदा का बंदा हूं, तुम्हारा नहीं'' - नानकदेव ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया।

''अच्छा! तो तुम खुद को 'खुदा का बंदा' भी कहते हो। मगर क्या तुम्हें मालूम है कि किसी व्यक्ति से मिलने से पहले उसे सलाम किया जाता है ?''

''मैं खुदा के अलावा और किसी को सलाम नहीं करता।''

''तब फिर खुदा के बंदे! मेरे साथ नमाज पढ़ने चल।'' क्रोधित हो सूबेदार बोला।

और नानकदेव उसके साथ मस्जिद गये। सूबेदार और काजी नीचे बैठकर नमाज पढ़ने लगे, मगर गुरु नानक वैसे ही खड़े रहे। नमाज पढ़ते-पढ़ते काजी सोचने लगा कि आखिर उसने इस दम्भी को झुका ही दिया, जबकि सूबेदार का ध्यान घर की ओर लगा हुआ था। बात यह थी कि उस दिन अरब का एक व्यापारी बढ़िया घोड़े लेकर उसके पास आने वाला था। वह सोचने लगा कि शायद व्यापारी उसका इंतजार करता होगा, इसलिए नमाज जल्दी खत्म हो, तो वह घर जाकर सौदा तय करे।

नमाज खत्म होने पर वे दोनों जब उठ खड़े हुए, तो उन्होंने नानकदेव को चुपचाप खड़े पाया। सूबेदार को गुस्सा आया। बोला, ''तुम सचमुच ढोंगी हो। खुदा का नाम लेते हो, मगर नमाज नहीं पढ़ते।''

''नमाज पढ़ता भी तो किसके साथ ? नानकदेव बोले- ''क्या आप लोगों के साथ, जिनका ध्यान खुदा की तरफ था ही नहीं ? अब आप ही सोचिए, क्या आपका ध्यान उस समय बढ़िया घोड़े खरीदने की तरफ था या नहीं ? और ये काजीजी तो उस समय मन ही मन खुश हो रहे थे कि उन्होंने मुझे मस्जिद में लाकर बड़ा तीर मार लिया है।''

यह सुनते ही दोनों झेंप गए और गुरु नानक के चरणों पर गिरकर उन्होंने क्षमा मांगी।

विश्व प्रेम

स्वामी दयानंद ने फर्रुखाबाद में गंगा के किनारे एक झोपड़ी में अपना डेरा डाला था। कैलास नामक एक युवक की उन पर बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन वह उनके पास आया और उसने अंदर आने की अनुमति मांगी। दयानंद हंसते हुए बोले, ''यदि कैलास इस छोटे से झोपड़े में प्रवेश कर सकता है, तो उसे अवश्य आना चाहिए।'' अंदर आते ही वह बोला, ''स्वामीजी! आज मैं आपके पास किसी खास उद्देश्य से आया हूं। बात यह है कि मेरे मन में रह-रहकर यह विचार उठता है कि इतनी साधना करने के बाद जब आप मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी हो गए हैं, तब फिर आप इस संसार की चिंता क्यों करते हैं?'' प्रश्न सुनकर स्वामीजी मुस्करा दिए, बोले ''कैलास! यह भी कोई प्रश्न है ? जब मुझे साफ-साफ दिखाई दे रहा है कि संसार में जहां-तहां अशांति है, यह अश्रु-सागर में डूब रहा है, दु:खों की अग्नि में झुलस रहा है, अत्याचारों से त्रस्त है, तब भला ऐसी स्थिति में उसे नजरअंदाज कैसे कर सकता हूं ? मैं मोक्ष-प्राप्ति का इच्छुक नहीं हूं, न ही शांतिपूर्वक मुक्ति चाहता हूं। मैं मुक्त होउंगा, तो सबको साथ लेकर अन्यथा मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। कैलास! इसे अच्छी तरह समझ लो कि जो सच्चे हृदय से जनार्दन से प्यार करना चाहता है, उसे चाहिए कि वह जनता से, जो कि जनार्दन की ही कृति है, पहले प्यार करे, तभी जनार्दन का प्यार उसे मिलेगा।

मांस निर्यात पर रोक लगाई जाए

गोविभा का एक अंक प्राप्त हुआ। सर्वोदय के विचार को लेकर प्रकाशित पत्र ने मन की गहराइयों को छुआ। आवश्यकता है ऐसे विचारों की, जिससे सामाजिक समरसता का वातावरण बने। नरेंद्र दुबे जी का आलेख 'संकट में गोवंश : सविधान संशोधन जरूरी' पढ़ा। बहुत अच्छा लगा। गाय और गोवंश के साथ-साथ संपूर्ण पशु धन पर संकट है। दूसरी ओर हमारी सरकारें पशुओं के मांस का निर्यात कर रही हैं और इसके लिए 'स्वचालित कत्लगाह' बनवा रही हैं। आज आवश्यकता है मांस के निर्यात को रोकने की अन्यथा सम्पूर्ण भारत पशुधन विहीन हो जाएगा। प्रो.गणेशदत्त त्रिपाठी का आलेख इतिहास की व्याख्या कर सत्य को बदलने का प्रयास कर रहा है। आर्य बाहर से आये हैं, यह ऐतिहासिक सत्य है और इसमें बुरा क्या है? शक, हूण, कुषाण, मुगल, यवन, सैयद भी तो बाहर से आये हैं। यहां के आदिवासी ही मूल निवासी हैं। - डॉ.इकरार अहमद, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, विवेकानंद ग्रामोद्योग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दिबियापुर-ओरैया

रजि. MPHIN/2003/11246 Postal Reg. ICD. (MP) 1106/2012-14

गोविभा 20 सितम्बर, 2012

भूदान में दिखती है संत विनोबा भावे की ताकत

इन्दौर। संत विनोबा की जंयती के उपलक्ष्य में विभिन्न स्थानों पर कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। महाराजा रणजीतसिंह कॉलेज में व्याख्यान आयोजित किया गया। डॉ.पुष्पेंद्र दुबे ने कहा कि विनोबा ने सारा जीवन अहिंसक शक्ति की खोज में लगाया। इस शक्ति का दर्शन हमें भूदान आंदोलन व चंबल के डाकुओं के आत्म सपर्मण में मिलता है। प्रिया सर्व उत्थान सेवा संस्था द्वारा विनोबा भावे की जयंती के उपलक्ष्य में छोटा बांगड़दा में संगोष्ठी का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि थीं सामाजिक कार्यकर्ता विजय वर्मा। संस्थान के अध्यक्ष वीरेंद्र सेठिया ने बताया कि गोष्ठी में विनोबाजी के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का आह्वान किया गया। संचालन केए राठौर ने किया। आभार सुभद्रा चौहान ने माना।

योग-सहयोग प्रवाह मास

सर्वोदय मंडल, सर्वोदय योग प्राकृतिक जीवन संघ, संपूर्ण क्रांति अध्ययन मंडल के संयुक्त तत्वावधान में सर्वोदय योग-सहयोग प्रवाह मास का आयोजन किया जा रहा है। इसके तहत विनोबा जयंती से लेकर जयप्रकाश नारायण जंयती तक नगर में विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाएगा। संयोजक किशोर गुप्त ने बताया कि सर्वधर्म प्रार्थना सभाएं, प्रभात फेरियां, भजन संगीत, शिक्षा संगोष्ठी, व्याख्यान, पर्यावरण संरक्षण आदि कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। ग्राम माचला में गोविंदराम सेक्सरिया प्रबंध संस्थान के छात्रों ने विनोबा के दिखाए रास्ते पर चलने का संकल्प लिया। सर्वोदय शिक्षण समिति ने विनोबा जयंती के मौके पर विनोबा भावे के विचार एवं कर्म विषय पर गोष्ठी आयोजित की थी। विनोबा भावे के आचार-विचार को अपनाने वाले दो साधकों किशोर भाई गुप्त एवं पुष्पा सिन्हा ने छात्रों के साथ अपने विचार साझा किए। श्री गुप्त ने कहा कि विनोबा जी ने भूदान-ग्रामदान आंदोलन के जरिए जमीन के विवादों का हल खोजने का काम किया। नवेंदु महोदय ने कहा कि विनोबाजी के विचारों से युवा पीढ़ी को सीख लेने की जरूरत है। प्रारंभ में सर्वोदय शिक्षण समिति के संयोजक कुमार सिद्धार्थ ने संस्था की गतिविधियों की जानकारी दी। अतिथि वक्ताओं का स्वागत डॉ.कमलेश करोड़े, भावेश चौधरी ने किया। संचालन रामनारायण दांगी ने किया।

ऋण माफी पर विचार

मुम्बई। खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग देश की लगभग साढ़े तीन हजार खादी ग्रामोद्योगी संस्थाओं को दिए गए ऋण को माफ करने पर विचार कर रहा है। इस बारे में आयोग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी उदयप्रतापसिंह ने सभी राज्य और क्षेत्रीय कार्यालयों के निदेशकों को पत्र जारी किया है। पत्र में कंसोर्टियम बैंक फायनेंस के साथ ही पुराने ऋण की जानकारी तत्काल मांगी गई है। मंत्रालय ने खादी ग्रामोद्योग आयोग को सभी प्रकार के नये-पुराने ऋण की इकाईवार जानकारी एकत्र करने के निर्देश जारी किए हैं। खादी संस्थाओं को ऋण माफी योजना में लाने के लिए तीन स्तर निर्धारित किए गए हैं। एक तो वे खादी संस्थाएं जिन्होंने खादी आयोग द्वारा दिए गए ऋण का दुरुपयोग करते हुए किसी भी प्रकार की राशि वापस नहीं की है। दूसरी वे संस्थाएं जो कम डिफाल्टर हैं। और तीसरी वे जो छोटी संस्थाओं की श्रेणी में आती हैं और जिन्हें सहायता की दरकार है। इसी प्रकार की जानकारी खादी ग्रामोद्योग बोर्ड से भी मांगी गयी है।

प्रकाशक :
नरेन्द्र दुबे, कार्याध्यक्ष, गोविज्ञान भारती
द्वारा मुंबई सर्वोदय मण्डल, 299, ताड़देव रोड, नानाचौक
मुंबई-400 007, फोन : (022) 23872061

डी-37, सुदामा नगर, इन्दौर-452 009
फोन : 0731-2489475, मो.: 97542 20781
www.govigyan.org ● e-mail : vinobaji1@gmail.com
prof.pushpendra@gmail.com

मुद्रण : श्रीकृति ग्राफिक्स, बी-133, सुदामानगर, इन्दौर
मो.: 98269 51703

वार्षिक शुल्क : रु. 50 एक प्रति : रु. 5

गोविभा
रजि. MPHIN/2003/11246
पोस्टल रजि.आई.सी.डी. (एम.पी.) 1106/12-14

सेवा में,